रूप-राशि

श्रीरामकुमार वर्मा

रूपराशि

लेखक
श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०

प्रकाशक
सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी ।

प्रथम	जुलाई	मूल्य
संस्करण	१९३३	बारह आने
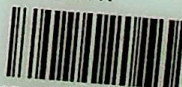
मुद्रक
श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

परिचय

आज मेरी कविता 'रूपराशि' के रूप में प्रकाशित हो रही है। इस रूपराशि में मुझे अपनी आत्मा की सबसे अधिक अभिव्यक्ति जान पड़ी। मेरे हृदय में उत्साह, सुख और आशा की जो वेगवती भावनाएँ अपना लक्ष्य खोजना चाहती थी, उन्हें अपना स्थान मिल गया। यही सबसे अधिक शान्ति है—सुख है।

• कविता में मुझे कल्पना सबसे अच्छी मालूम होती है। वही एक सूत्र है, जिसको पकड़ कर कवि इस संसार से उस स्थान पर चढ़ जाता है, जहाँ उसकी इच्छित भावनाओं के द्वारा एक स्वर्ण-संसार निर्मित रहता है। भावना (Emotion) तो इच्छा का तेजस्वी और परिष्कृत रूप है। वह हृदय को केवल वेगवान बना देती है; किन्तु कवि में निर्माण करने की शक्ति कल्पना के द्वारा ही आती है। मैं कल्पना का उपासक हूँ। इसीलिए मेरी रूपराशि अधिकतर कल्पना से ही निर्मित है।

• 'रूपराशि' में एक भावना और है—वह है अन्वेषण की। हृदय में 'किसी से' मिलने की आकांक्षा रहती है। जब मैं 'रूपराशि' की एक कविता लिख लेता हूँ, तो जैसे मैंने किसी को हृदय से लगा लिया है—नेत्रों को दर्शन का वरदान मिल गया है। उस समय मुझे ऐसा मालूम

होता है जैसे मैं सांख्यशास्त्र का पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु—लता, कली, लहर, संध्या, पवन—प्रकृति बनकर मेरी प्रेयसी हो रही हैं। इस भावना में आध्यात्मिकता का अंश अवश्य है; पर उससे पहले मेरी भावना की तृप्ति है।

• 'रूपराशि' लिखते समय मेरी जो-जो भावनाएँ थीं, उन्हीं का प्रदर्शन मैंने यहां कर दिया है। इससे शायद मेरी कविता का रहस्य अधिक स्पष्ट हो गया है।

• प्रस्तुत संग्रह में मेरा 'अभिशाप' (अशान्त-कंकाल-अंत) भी सम्मिलित है। उसमें मेरी निराश भावनाओं का प्रदर्शन है। 'रूपराशि' और 'अभिशाप' ये दोनों भिन्न अवसरों पर विरुद्ध भावनाओं के चित्रण हैं। उन्हें साथ-साथ पढ़ने में मुझे संतोष होता है। इसीलिये अपनी इच्छा से मैंने उसे इस संग्रह में रख दिया है। 'प्रथमदर्शन' शीर्षक कविता मैंने यह सोच कर लिखी थी कि देखूँ, मैं एक भावना से कितनी लम्बी कविता लिख सकता हूँ, जहाँ प्रकृति के सुखमय स्वरूप का सामञ्जस्य पूर्ण रूप से मानवी भावनाओं के साथ हो जाय। पीछे इसी कविता के आधार पर 'निशीथ' का निर्माण हुआ। अपने ढंग की यह मेरी प्रथम कविता होने के कारण इस संग्रह में जा रही है। 'शुजा' मेरी सबसे लम्बी ऐतिहासिक कविता है, अभी तीन-चार दिन हुए समाप्त हुई है।

लक्ष्मी-भवन
नरसिंहपुर
१५ जून १९३३

श्री रामकुमार वर्मा।

प्रोफेसर रामकुमारजी वर्मा, एम० ए०
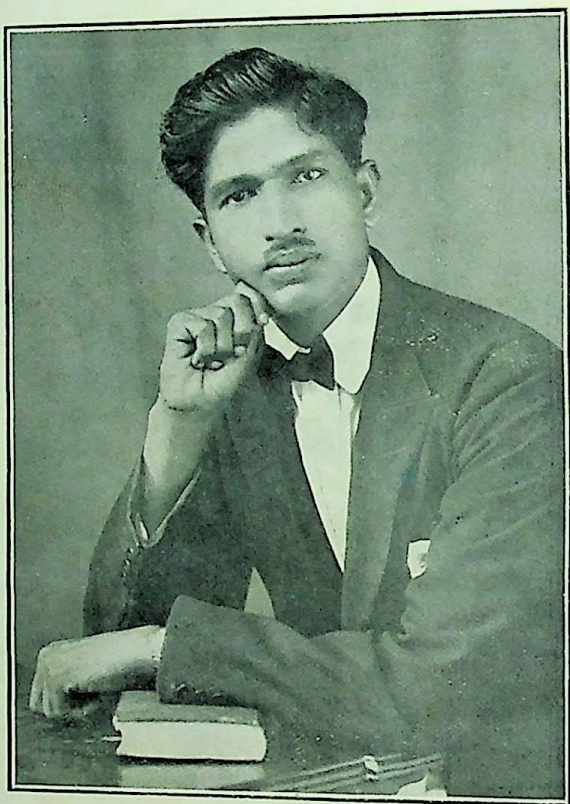
प्रोफेसर रामकुमारजी वर्मा, एम० ए०

रूपराशि

(नूरजहाँ का शयन-गृह)

हे आँसू ! मेरे सहचर ! गत दिवसों के पल चार !
मेरा सुख बह गया—बह रहे हो तुम भी इस बार !!
ये क्षण—विष के बिन्दु—पतन के पथ के यात्री मौन—
प्रति दिन बढ़ता हिंस्र-प्रलोभन के मुख का आकार !
विजय की होगी हार ?

(सलीम का प्रवेश)

सम्राज्ञी ! मेरे उर की छवि ! मेरे स्वर की साँस !
गत जीवन था एक घूँट ! क्या इतनी ही है प्यास ?
पद-रज बनने को उत्सुक है, यह विशाल साम्राज्य !
तुम हो—मैं हूँ—रूप-राशि है, यह मदिरा है पास !!
विजय का पहनो हार !

(नूरजहाँ का पतन)

— श्री रामकुमार वर्मा —
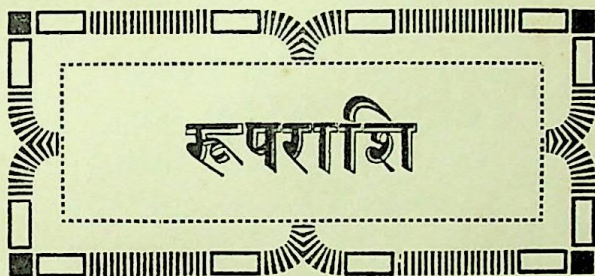
रूपराशि

१

यह रात—तिमिर—निस्तब्ध—शान्त,
केवल जग में है सजग श्वास !
हैं शिथिल भ्रमित - से दो पतंग,
मेरे दीपक के आस - पास !!

नभ-पथ यात्री तारे समौन,
हलकी नीली लघु किरण डाल !
जागृति का देकर कुछ प्रकाश,
उज्ज्वल करते हैं अन्तराल !!

कलिका के निद्रित अधर मंजु,
कोमल शीतल निस्पन्द बन्द !
दें ऐसे भावों के समूह,
उर में जागें दो - चार छन्द !!

———

२

यह अभिनव श्री विकसित हो।
तरु उमंग से निर्मित कलिका,
स्वप्न-रूप से मुकुलित हो
यह अभिनव श्री विकसित हो।

चन्द्र-किरन का उज्ज्वल पावस,
बरस - बरस कर सस्मित हो।
तारों का अस्फुट शिशुपन,
लुक-छिप कर छवि पर विस्मित हो।
यह अभिनव श्री विकसित हो।

मेरे यौवन के वैभव से,
यह अनन्त श्री पुलकित हो।
मेरे जीवन से सदैव ही
इसका जीवन परिचित हो।
यह अभिनव श्री विकसित हो।

—

३

शान्त है, नीरव है यह रात !
सुकुमारी ! चुप !! पवन न पावे
प्रति - ध्वनि का आघात !
शान्त है, नीरव है यह रात !!

श्वास - तार पर झूल रहा है,
सुप्त शयित संसार ।
तारे हावों ही में इंगित—
करते कम्पित प्यार ।

क्यों चिन्तित हो ? जग-दृग पर है,
मधुर नींद का भार ।
मैं हूँ, तुम हो, जाग रहे हैं—
दो विस्तृत संसार ।

अपनी वाणी में रख लो,
मेरे उर का सम्वाद ।
आओ, सो जाओ, भूलो
इस जागृतपन की याद !!

———

४

समय शान्त है मौन तपस्वी-सा तप में लवलीन ,
रात्रि मुझे तो दिन ही है, केवल दिनकर से हीन ;
नभ के पद पर धरा पड़ी है, यह है चिर अभिशाप ,
तारे अपना हृदय खोल दिखलाते हैं सन्ताप ।

प्रेयसि जग है एक—
भटकता शून्य स-तम अज्ञात,
एक ज्योति - सी उठो—
गिरो पथ-पथ पर बन कर प्रात ।

मैं तुमसे मिल सकूँ यथा उर से सुकुमार दुकूल ,
समय-लता में खिले मिलन के दिन का उत्सुक फूल ;
मेरे बाहु - पाश से वेष्टित हो यह मृदुल शरीर ,
चारों ओर स्वर्ग के होगा पृथ्वी का प्राचीर ।

नभ के उर में विमल नीलिमा,
शयित हुई सुकुमार ,
उसी भाँति तुमसे निर्मित हो,
मेरा उर - विस्तार ।

—

निर्जन वन के बीच शब्द से बहुत दूर—उस पार,
जहाँ पहनती है पृथ्वी चुपचाप क्षितिज का हार;
दिन में है सूना प्रकाश, निशि में तम का विस्तार,
इन दोनों से ही निर्मित है एक शून्य संसार।

प्रातः पवन एक रोगी-सा,
तजता है उच्छ्वास।
वहाँ किस तरह तुम, ओ प्रेयसि,
बना चुकीं अधिवास!

वहाँ ग्रीष्म है ज्वालाओं का भीषण हाहाकार,
वर्षा में नभ से भू पर गिरता है पारावार;
शीतकाल हिम से निर्मित है जग ही है नीहार,
यह अचेत भू-खण्ड जहाँ ये तीन स्वप्न प्रतिवार—

आते हैं लेकर अपना—
अपना नीरस आकार।
किस प्रकार, ओ प्रेयसि! रखती—
हो यह जीवन-भार?

मैं उत्सुक हूँ, लिये हुए हूँ, नभ-सा उर-विस्तार,
क्या वसन्त-सा सुखद नहीं है मेरा विकसित प्यार ?
वायु नहीं क्या साँस ? भूलता है जिसमें यह नाम,
तुमको पाने का प्रयत्न-श्रम है मेरा विश्राम !!

आओ, आज स्वर्ग - पृथ्वी—
मिल कर हो जावें एक !
मेरे उर का आज तुम्हारे—
उर से हो अभिषेक !!

—

६

मेरी सेज सुमन - तन हो

मेरी आँखों में स्वप्नों का, कुसुमित सुरभित मधुवन हो ;
सभी विश्व के प्राणों का मेरी मदिरा में स्पन्दन हो।
आँख खुले--मीठी पीड़ा से कुछ अशान्त यह यौवन हो ;
मेरी आँखों पर सुकुमारी की आँखों का चितवन हो।
मेरी साँसों में उसकी साँसों का सुरभित सु-पवन हो ;
उसके स्वर से संचालित ही मेरे मन की धड़कन हो।
मृदु समीर से उसके दो केशों का तिरछा नर्तन हो ;
विस्मृति की मादकता से मेरा मन ही उसका मन हो।
अधर - सुधा के दो भागों का आपस में परिवर्त्तन हो ;
प्रभु, मेरे इस जीवन से, अच्छा न किसी का जीवन हो।

७

हटा दो घूँघट-पट इस बार।

नेत्र में जग जागृति की ज्योति, और रवि के जीवन का वास।
हृदय से शशि का शीतल हास, उसी का कण-कण में अधिवास।
अँधेरा है यह दृग-संसार, हटा दो घूँघट-पट इस बार।

कहाँ से यह पाया है चीर, सजी है क्या लज्जा साकार।
देखता है नभ चारों ओर, खोल कर तारों के लघु द्वार।
खोल कर इन आँखों का प्यार, हटा दो घूँघट पट इस बार।

कहाँ से पाया है यह चीर, नहीं है क्या तन पर यह भार।
चन्द्रिका पर बादल का वस्त्र, धूम-कण का घन-रूप अपार।
धूम-कण घन का कर प्रतिकार, हटा दो घूँघट-पट इस बार।

दिव्य जीवन है छवि का पान, यही आत्मा की तृषित पुकार।
उभय अधरों में है सोल्लास, मृत्यु-जीवन का सम विस्तार।
एक इस पार, एक उस पार, हटा दो घूँघट-पट इस बार।

—

८

वृन्दावन का वह रास-रंग।

तुम रति-सी आई थीं सभीत, मैं ? मैं था उच्छृंखल अनंग।
मेरे कितने थे रखे नाम, गोपाल, कृष्ण, बलवीर, श्याम;
सूनी गलियों में थीं सभीत, इसलिए चलाती मुझे संग।
नीले नभ में तुम रोज़-रोज़, कितने ही तारे नये खोज;
मुझसे कहती थीं चलो आज, उनमें रहने की है उमंग।
सच झूठ (कहूँ मैं किस प्रकार), गिरती थीं भू पर हार-हार;
मेरे हाथों में तन समेट, धर जाने का था नया ढंग।
मेरी बनमाला तोड़-तोड़, अपनी माला से जोड़-जोड़।
मेरे उर-तट पर सदा छोड़—देती थीं साँसों की तरंग;
तुम रति-सी आई थीं सभीत, मैं ? मै था उच्छृंखल अनङ्ग।

वृन्दावन का वह रास-रंग।

६

पल्लव के नव अंचल में—

मुख न छिपा मेरी सुकुमारि !
विकल विश्व कोलाहल में।
उषा तोड़ तारों के फूल,
खेल रही है बादल में;
तू भी बन माला की रेख
सो मेरे वक्षस्थल में।
स्वप्न देख कर यह आकाश—
फैला है निर्भर जल में;
मेरे मानस में तू देवि !
उसी भाँति बिखरे पल में।
मैं तू खिल कर समुद सहास,
अब इस जड़ जग जंगल में;
भूलें नियति, वियति का चक्र,
लय हों निज अन्तस्तल में।

—

१०

ओ प्रेयसि ! रूप तुम्हारा—
नव वसन्त के दर्पण में—
अंकित सस्मित है सारा !
कोकिल ने तुम्हें पुकारा !!
मृदु समीर सौदागर ने—
मेरा स्वर - भार उतारा !
मैंने जब तुम्हें पुकारा !!
तुम्हें देख शशि भस्म लगा—
दुर्बल हो गगन सिधारा !
तारों ने तुम्हें पुकारा !!
हँसकर फूट गया बुद्‌बुद्
सरिता-शिशु सरस दुलारा !
कहता था रूप तुम्हारा !!
ओ प्रेयसि ! रूप तुम्हारा !

———

११

मेरे सुख की किरन अमर,
जीवन-बूँदों से चल-चलकर;
बिखरो इन्द्र-धनुष बन कर,
मेरे सुख की किरन अमर।

मेरे नव-जीवन बादल में,
रंग सुनहला दोगी भर;
बाला बनकर छू लोगी क्या,
मेरा यह पीड़ित अन्तर।

जब मेरे क्षण सोते होंगे,
अन्धकार के अम्बर पर;
तब तुम प्रथम प्रकाश-ज्योति बन,
उन्हें जगाना चूम अधर।

मेरी आँखों के आँसू के
बिन्दु बने नीरव निर्झर;
तब तुम उस धारा पर गिरना,
प्रतिबिम्बित होकर मृदुतर।

मेरे जीवन-नभ के नीचे,
जब हो अन्धकार - सागर ;
तब तुम धीरे-धीरे से आ,
फेनिल-सी सजना सुखकर।

मेरे जीवन में जब आवें,
अन्धकार के श्याम प्रहर ;
तब तुम खद्योतों में छिप कर,
आ जाना चुपचाप उतर।

मेरे सुख की किरन अमर।

१२

वह प्रकाश, वह नव प्रकाश—
किस प्राची से उतर रहा है,
उज्ज्वल कर नत नभ उदास
वह नव प्रकाश

रवि शशि के बिखरे पहियों पर
समय कर रहा है प्रवास
उसकी गति से ही किरणें,
करती हैं जल-थल में निवास

अभिनव दिव्य प्रकाश हो उठे
हैं जिनसे बादल स-हास
स्वर्ण पंख फैला कर-कर दे,
मेरे प्रातः का विकास

—

१३

प्राची में रंगों का ऋतुराज
स्वप्न-सदृश नभ की पलकों में,
झूला खिलकर आज
प्राची में रंगों का ऋतुराज

सरिता तरु पल्लव में—
माया का प्रज्ज्वलित प्रहार—
उषा चंचला करती थी,
रख नव अभिनव आकार

तारक-कम्पन में हिलता था
निद्रा का संसार
मृदुतर भोले दृग से जागा
कोमल कुसुम कुमार
वही मैं हूँ संसार!

—

१४

कूल

कहा—'प्रेयसि, क्यों प्रातःकाल,
कुसुम का तुम करती हो चयन'
प्रात-सी बनी सौम्य सुकुमार,
कुसुम से सजे सजीले नयन
लजीले नयन ! कुसुम-से नयन !!

कहा—'क्यों सारी सूनी रात,
गिना करती हो तारक इन्दु'
बनी रजनी-सी निद्रित श्याम,
सजे मुख पर प्रस्वेद के विन्दु।
स्वेद के विन्दु, सु-तारक विन्दु !!

कहा—'यह मुख का विकसित मौन,
कभी क्या बन सकता है गान
उठी थी चिन्तित चितवन एक,
उसी में थे कुछ स्वर अनजान
मौन था गान, दिव्य था गान

कहा—'क्यों मेरा जर्जर पत्र,
देखती हो यों बनी अधीर
नेत्र की पुतली ने चुपचाप,
पत्र की दिखला दी तसवीर
प्रश्न ही बनी रही तसवीर

कहा—'यह चंचल यौवन - नाव
लगेगी किस सरिता के कूल
अश्रु-सरि की पतली-सी धार
बह गई जहाँ पड़ी थी धूल
यही है कूल, धूल-मय कूल

—

१५

फूलों में किसकी मुस्कान
बिखर गई है, कलिकाओं में—
भरने को आनन्द महान
फूलों में किसकी मुस्कान

कौन गा रहा है कोकिल के—
कंठों से मधुमय कल गान
कौन भ्रमर बन कर करता है
कलियों से नूतन पहिचान

मेरे भावों के प्रसून भी,
पहने रंगों के परिधान
मेरे जीवन में भी आवे,
फूलों की मीठी मुस्कान

—

१६

प्रिये, यह मेरा है अधिवास
इसके पीछे ही मिलता है,
पृथ्वी से आकाश
प्रिये, यह मेरा है अधिवास

तारे नभ से किरणें ही
देकर हो जाते मौन
अन्धकार फैला जाता है,
यहाँ न जाने कौन

शिशिर - ग्रीष्म - पावस - शिशु
हँस कर, जल कर, रोकर आह!
बन्दी हैं! (क्यों अरे, तुम्हारे,
दृग में अश्रु - प्रवाह !!)

तुम तो तरुणा करुणा हो,
आई हो मेरे द्वार !
क्या मेरा अधिवास बनेगा
एक अमर संसार ?

—

१७

जीवन की परिधि विशाल
दृग-पथ में नहीं समाती,
क्यों है अशान्ति विकराल ?

दुख के प्राचीरों पर हँसता,
जब सुख का प्रातःकाल
तब रव करते हैं निर्बल,
इच्छा विहगों के बाल

यह क्या! सुख के लघु पल में,
भावों का विषम उबाल!
कहते हो जग जीवन है
परिवर्त्तन ही की चाल !!

यह इन्द्रधनुष क्षण - भर है,
पर है वैभव का सार!
काले नश्वर बादल में,
है जीवन का शृंगार !!

१८

इन्द्रधनुष-सा यह जीवन
दुख के काले बादल में
अंकित है इस क्षण या उस क्षण।

विश्व अश्रुमय था उससे,
निकली चित् की लघु एक किरण
जीवन के नूतन रंगों का,
हुआ शून्य में वक्र पतन

एक बार, बस एक बार
नभ में ऐसा हो परिवर्त्तन
मेरा यह अस्तित्व बने
उज्ज्वल किरणों का अपनापन

१६

इस जग में जीवित हूँ मैं,
कण-कण के परिवर्त्तन से
तुमने मुझको बाँधा है,
इन साँसों के बन्धन से

चर हूँ, पर नियति नचाती,
मुझको मेरे ही मन से
नश्वरता से लड़ता हूँ,
यौवन के अवलम्बन से

मैं भूला अपनापन पथ,
जग के इस अविदित वन से
प्रेयसि ! आओ तारों के—
झिलमिल प्रकाश-कम्पन से

—

२०

नव वसन्त का पुलकित मन !
कितने फूलों के भवनों में,
हँसता है ले नव जीवन !
नव वसन्त का पुलकित मन !

प्रिये, शब्द प्रत्येक तुम्हारा
है सुरभित सस्मित उपवन।
उसमें सुरभित साँस सभी...
उफ़, कैसा है मतवालापन !

यह उर-बाल विहँग हैं कैसे
करें कलित कलरव कूजन ?
केवल एक सुमन-यौवन,
रहने दो उसका कुसुमित धन।

२१

संध्या पहन वसन्त-वसन !
पावस-तम से श्याम गगन में ,
भरती है नूतन जीवन !
संध्या पहन वसन्त-वसन !

बादल के सूखे पल्लव
करते रंगों से आलिंगन।
विहगों के कंठों में आया
मेरा पुलकित स्वर-कंपन।

मेरी कविताएँ बिखरा कर
रँगा किसी ने सांध्य-गगन
प्रेयसि, मेरी कविताओं से
भर दो नभ, तरु, पल्लव, तृन।

२२

सन्ध्या के चपल विचार
क्यों रखते हैं बादल के छोटे जीवन पर भार
क्षण - भर हँसता है बादल,
पाकर पश्चिम का प्यार

फिर स - तम निराशा ही में,
खोता उसका उद्‌गार
मैं भी तो लघु बादल हूँ,
जीवन है क्षण दो - चार

उच्छ्वासों से निर्मित है,
मेरा कम्पित आकार
प्रेयसि, तुम चन्द्रकला - सी
आ जाओ मेरे द्वार
उज्ज्वल अधरों से दे दो,
उज्ज्वल जीवन का सार

—

२३

यह प्रशान्त छाया—
सोई है—पल्लव-शिशु के—
हिलने से कम्पन आया।

प्रेयसि ! शयन धरा पर करने
में है स्वर्गोल्लास।
देखो, छाया पड़ी हुई है,
मृत पल्लव के पास।

—और तुम्हारे उर में है
यह भाग्यवान जो हार—
कभी गिरेगा भू पर लेकर,
अपना सूखा भार।

आओ, हम दोनों समीप बैठें,
देखें आकाश !
वे दोनों तारे देखो—
कितने - कितने हैं पास !!

२४

जीवन का गगन विशाल।
दुख-सुख के रवि-शशि की है,
जिसमें नित नियमित चाल !
जीवन का गगन विशाल।

सुख-शशि घटता रहता है
डसता मावस का व्याल।
दुख-रवि की अमर प्रखरता
प्रलयंकर रोष कराल।

सुख की राका का केवल
है एक मनोरम काल।
आओ प्रेयसि, बैठो यह
है प्रेम-मिलन की डाल।

—

२५

इस जीवन का खेल बहुत मैं खेला
प्रेयसि ! जब तुम रूठी थीं, तब मैंने तुम्हें मनाया
ऊषागम पर विहग - स्वरों से, मैंने तुम्हें जगाया
पवन-पंख पर बैठ, सुमन के द्वार खोलने आया
नष्ट कर चुका कई बार, इस अन्धकार की माया
बिता चुका हूँ यौवन की, सुख की, वसन्त की वेला
इस जीवन का खेल बहुत मैं खेला

मत कहना मेरा जीवन है—निर्जन-सा एकान्त
यद्यपि रहता हूँ वियोग से मैं अस्थिर उद्भ्रान्त
जब निर्बल हो ओस विन्दु-सा पड़ा रहूँगा श्रान्त
एक किरण-सी आ जाना तुम मेरे उर में शान्त
प्रिये, रहूँगा फिर भविष्य जीवन में नहीं अकेला
इस जीवन का खेल बहुत मैं खेला

२६

तुम्हारा है चंचल जीवन
लोल लहरो! ठहरो इस बार,
यहाँ है उच्छृंखल जीवन

वायु की आई एक हिलोर
बहीं इस ओर—बहीं उस ओर
तरल तन और सरल मन हाय!
यही तो है दुख का बन्धन

उमड़ती हो क्या तुम पथ भूल
कभी इस कूल, कभी उस कूल
इसी गति से इंगित है हाय!
जगत का नियमित संचालन

सजाओ मेरी छवि से वारि
कलित सुकुमारि! ललित सुकुमारि!
आज तन्मय हो तन मय रूप,
न हो उर में कोई कम्पन
तुम्हारा है चंचल जीवन

—

२७

सौरभ-से मेरे शिशु विचार
पृथ्वी प्रसून की गोद बैठ,
नभ देख रहे हैं बार-बार
सौरभ-से मेरे शिशु विचार

हँसते हैं प्राची दीप देख
फैलाते अपने कर उदार
प्रमुदित होकर जा रहे सद्म
तारक परिजन दो - तीन - चार

माँ, ये प्रभात झोंके अनेक,
करते हैं रह-रह कर प्रहार
नीले अंचल में कर विलीन,
इनको भी कर लो निराकार

प्रेयसि, बनो दूधवाली तुम,
मैं बन जाऊँ श्याम।
मैं छेड़ूँ, रोकूँ पथ, करने
दूँ न तुम्हें कुछ काम।

इस ग्वालिनि के पय में पानी,
नहीं...ब्रह्म में माया।
दिव्य दूध में सकल विश्व का,
गूढ़ रहस्य समाया!

उसी समय जब तुम लज्जा से,
होगी पानी - पानी।
मैं होऊँगा दूध, दूधवाली,
तुम होगी पानी!!

———

२६

चुन-चुन कुसुम-माल गूँथी ओ,
अब तो आओ प्राणाधार !
जब-जब माल बनाऊँ प्रियतम ;
खिले जगत के सब वन-उपवन,
कैसे पहनाने आऊँ
माला सूखी पथ में प्रति बार !—चुन-चुन०

बोल रही हूँ कम्पित स्वर में !
माला काँप रही है कर में !!
किस कोने में सोने-सा है
बना तुम्हारा स्वागत द्वार !

चुन-चुन कुसुम माल गूँथी ओ,
अब तो आओ प्राणाधार !

—

३०

यह जीवन ही है भूल !
आशा पर आशा आती है
जब दिन हैं प्रतिकूल
यह जीवन ही है भूल !

काँटे हैं तन में फिर भी
हँसते रहते हैं फूल ।
आँखों में आँसू हैं फिर भी
हँस पड़ता शिशु भूल ।

उसी भाँति गिर कर भी हम
सब हँसते हैं निर्मूल ।
यह जीवन ही है भूल ।

३१

वन के उर में चुभा हुआ है
यह टेढ़ा पथ - तीर
तरु - मर्मर से यही वेदना
व्यञ्जित है गम्भीर

धुँधला संध्या वस्त्र—
छिपाये है रहस्य चुप-चाप
झींगुर के स्वर में सुन पड़ता
निर्बल का अभिशाप

तृण-सी उँगली से खिंच जावे,
शर का विषम प्रहार
वन के उर में उषा छिपा ले,
अपना मुख इस बार

—

३२

मैं तुमसे मिल गया प्रिये !
यह है जीवन का अन्त
इसी मिलन का गीत कोकिले !
गा जीवन - पर्यन्त

सुमन मधुप को बुला - बुला कर,
देंगे यह सम्वाद
कलियाँ कल जागेंगी लेकर,
इसी मिलन की याद

प्राची के बिखरे सब बादल,
बदल - बदल कर रूप
किरण साँस में बतला देंगे,
मेरा मिलन अनूप

इस संसार विविर में है,
अति लघु प्राणों का वास
सुख - दुख के दो कोण,
उन्हीं में रुदन और है हास

इसके परिमित पल में है—
इस जीवन का उपहास
एक दृष्टि में जन्म, दूसरी—
में है अमर प्रवास

यह संसार शिशिर है—
तुम हो विश्वाकार वसन्त
मैं तुमसे मिल गया प्रिये !
यह है यात्रा का अन्त

—

३३

मौन आह्वान, मौन आह्वान
नत नयन निर्मित नूतन गान
यद्यपि कम्पित स्वर-लहरी है
अश्रु - विन्दु दृग का प्रहरी है
अश्रु गिरा, लोचन उज्ज्वल कर
उनमें अविकल आकांक्षा भर
(चतुरे !) अविचल होकर दृग-पट स्थिर कर
लखकर मृगी समान
मौन आह्वान
नत नयन निर्मित नूतन गान

ओष्ठकार्य क्यों करें न लोचन
क्यों न बने स्मृति शोक-विमोचन
अस्फुट गायन ही को प्रतिध्वनि
क्यों न मुझे दे शान्ति सुलोचनि !
(सरले !) ओष्ठ - मिलन की रेख मिटा,
दो अर्थ खुला दृग-दान
मौन आह्वान
नत नयन निर्मित नूतन गान

—

प्रथम दर्शन

नाच चुका सविलास चन्द्र निर्झर पर सारी रात,
आया उसके तट पर क्षीण स्मृति-सा सुखद प्रभात।
तारों की बुझती चिनगारी काँप रही थी म्लान,
सिहर-सिहर कर लहर झुलाती उसको गाकर गान।
कलियाँ अञ्चल में भर कर
कितने रंगों का रूप;
तट पर झाँक रही थीं पाकर
प्रथम सुनहलो धूप।

गूँथा था रवि ने फूलों का हार सुपोत प्रभात,
मुग्धा के मुख-सा धीरे-से दिखा धरा का गात;
तिमिर हटा मानो वह हो व्यभिचारी का संकोच,
शिशु रवि बादल में छिप कर मुख निम्न रहा था सोच।
विचलित थे तरु अंक न स्थिर थे
लघु पल्लव उच्छ्वास;
क्योंकि पाप-सा तिमिर छिपा था,
उनके पद के पास।

प्रातः था, रवि ने सींचे थे अरुण जलद के फूल,
नभ को चिढ़ा रही थी सरिता उसी रूप से फूल;
रवि के रुचिर पाँवड़े बनने को बादल के व्यूह,
आते थे रँग भर-भर कर ले अपना अलग समूह।
विविध रंग की लहरों में
ऊषा करती थी स्नान;
भू भिखारिणी को दे देती
थी सोने का दान।

किरणें आईं पूर्व दिशा की पीली खिड़की खोल,
अविदित चारु चूम लेते कमला के कलित कपोल।
आई थी वह फूल तोड़ने को सुकुमारी बाल,
उषः समान कपोलों पर लहरे थे दो-दस बाल।
ओठों में लाली थी—वैसा ही—
था कोमल गात;
आँखों में यौवन का निकला—
था छविपूर्ण प्रभात।

विहग अजान सुगीत स्वरों में गाते थे संगीत,
बड़े ध्यान से सुन-सुन कर कर देती समय व्यतीत;
रुक जाती थी, कभी सँभलकर बढ़ती आगे और,
वहीं कोकिला की ध्वनि है क्या जहाँ खिला है बौर ?
सुनती थी वह ध्यान लगाकर
कुछ ऊँचा कर माथ,
और कान के पीछे सज्जित—
कर फूलों-सा हाथ।

आँखें उठकर ध्वनि सुनती थीं छोड़ दस्यु का ध्यान,
रुक-रुक कर वह होती थी उस उपवन में गतिमान;
कुछ कच वायु-वेग से गालों पर जाते थे घूम,
ओंठ अधखुले थे उनको झोंके लेते थे चूम।
चंचल गति करती थी वक्षस्थल
को कम्पित मन्द;
एक हाव था, एक भाव था—
यौवन का आनन्द।

इन्द्रधनुष-सा वस्त्र कर रहा था सज्जित सब अंग,
जिनमें अनिपुण चोर सदृश था आधा छिपा अनंग;
उसके वस्त्रों में ध्वनि थी वह बाला है सुकुलीन,
उसकी चितवन में ध्वनि थी वह यौवन में है लीन।
उसकी छवि से काँप रही थी
सरिता की भी चाल;
और शिलाओं के रँग के—
काले थे उसके बाल।

विहगों के बच्चों की बोली-सा उसका आनन्द,
नहीं छूटती यहाँ वहाँ चलकर सवेग औ' मन्द;
मानो प्रकृति बनी है ऐसी सरल बालिका-रूप,
सज्जित करने को आई है यह एकान्त अनूप।
पुष्प फेंकते थे अपने—
सौरभ का सारा कोष;
जिस प्रकार शिशु धन खोने पर—
भी हैं सरल अदोष।

फूलों में चित्रित था यौवन—कलिकाओं में प्यार,
उपवन में अंकित था जीवन का सुखमय आकार;
किन-किन रंगों में हँसकर फूलों के दिव्य स्वरूप,
हिलते थे उस स्वर्ण-नदी में जो कहलाती धूप।
उसी धूप में जो प्रभात की
गंगा है गतिमान;
कमला चुनने को आई थी
वृत्तों के वरदान।

वृत्तों के वरदान सहज सुन्दर छविशाली फूल,
चित्र खींचती थी सरिता उनका ही अपने कूल;
वायु सरल सेवक-सा बनकर चलता था अनुकूल,
फिर भी कर जाता था वह निष्प्राण ज़रा-सी भूल।
कमला के वस्त्रों में छिपकर
बहता इस उस ओर;
चंचल मन-सा उड़ जाता था
उसका अंचल-छोर।

जैसे ही वह चुनने आई एक फूल उस काल,
जिसने चुरा लिया था उसके ओठों का रंग लाल;
वैसे ही उसके चरणों में चुभा एक लघु शूल,
बिखर गए भू पर उसके मन के समेत सब फूल।
धूल लग गई बिखर गई
फूलों को केसर धूल;
उसी समय हँस पड़ी लहर भी
उस सरिता के कूल।

एक सुन पड़ी ध्वनि 'सी' की उस बाला की उस बार,
बैठ गई वह भू पर कुछ तिरछी-सी धनुषाकार;
केश उलट कर गिरे कपोलों पर झोंके में मुक्त,
आँखें भी हो गईं शीघ्र दो-चार अश्रु से युक्त।
झुका दिया बन पूर्ण शिथिल
घुटने पर अपना भाल,
वसुधे! उसका चित्र न तू
क्या ले पाई उस काल?

गिरा वियोगी-सा भू पर दो बूँद रक्त उस बार,
मानों अश्रु देख पग ने भी छोड़ी आँसू-धार;
गिरे हुए सूखे पल्लव पर ढुलका रक्त मलीन,
मानों माँ की गोद जा रहा है कोई शिशु दीन।
फूलों-सा वह रक्त हो गया
क्षण ही में निस्तेज;
वह पल्लव ही बना रुधिर के
मृत्यु-समय की सेज।

वायु ला रही थी उस क्षण ही एक ओर से गान,
सौरभ के समान उसने भर दिया सभी उद्यान;
धीरे-धीरे आती थी वह ले माधुर्य तरंग,
जैसे मुग्धा के मन में आती 'न' 'न' युक्त उमंग।
पग-पग पर वह ध्वनि आती थी
स्पष्ट रूप से पास;
मानों कोकिल - स्वर लेकर
आता समीप मधुमास।

भीत मृगी-सी ग्रीवा ने कुछ उठा दिया नत माथ,
पथ देता वरदान रूप में किसे गीत के साथ;
कौन आ रहा फूलों-सा बिखराता अपने गीत,
ध्वनि बनती जाती है मानों सुमधुर स्वप्न अतीत।
विहँग गीत पर करता था वह
गीत न अत्याचार;
कौन लूटने आता है अब
उपवन का सब प्यार?

पद-ध्वनि आई निकट वायु ने दिया यही संकेत,
कमला हुई सचेत कसी-सी सिकुड़ी भौंह समेत;
आता है यह कौन उठा था यह भयभीत विचार,
पल प्रत्येक बना देता मन में शंका दो-चार।
कमला का मन बना हुआ था
व्यस्त भाव का क्षेत्र;
दिशा बदलते रहते थे
उसके शंकित-से नेत्र।

देखा एक रूप, जिसमें है मादकता का सार,
लौट रहा उसके चरणों पर यौवन का संसार,
प्रतिबिंबित है अंग-अंग में अजित अनंग अनूप;
कोमल अरुण नेत्र में बहता है आसव का रूप।
ओठों से हिलता आता है
मंद वायु में गीत;
हाय, उसी ने तो कमला का
हृदय लिया है जीत।

सकुचाकर वह खड़ी हो गई, होकर किंचित त्रस्त,
आँखें भी तो देख रही थीं नीचे होकर व्यस्त;
नीचे डाल दिया उसने अपनी चितवन का शस्त्र,
पुनः सँभाला दो उँगली से सँभला अंचल-वस्त्र।
देख लिया धीरे से निज पग के
कंटक की ओर;
और किसी अविदित विलास ने
हृदय दिया झकझोर।

युवक बढ़ा उसकी मस्ती से भरी हुई थी चाल ;
खेल रहे थे कंधों पर उसके घुँघराले बाल।
वक्षःस्थल था पुष्ट और था सबल सतेज शरीर ;
किंतु देख कंटक पग में वह हुआ अतीव अधीर।
विमल भाव से गया, बढ़ाया
पग की ओर स्व-हाथ ;
खींच लिया कंटक धीरे से
नम्र भाव के साथ।

'क्षमा करो हे देवि, तुम्हें छूने में यदि की भूल ;
रहित किया मैंने काँटे से यह गुलाब का फूल।
यदि मैंने कुछ कार्य किया जो हो मन के प्रतिकूल ;
फलस्वरूप मेरे ही मन में लगे तुम्हीं-सा शूल।'
इन शब्दों के साथ खिल गई,
मुख पर कुछ मुस्कान ;
लोचन करते थे कमला की
मुग्ध माधुरी - पान।

कमला के पग से हटकर वह चुभा हृदय में शूल ;
पद उँगली से चिह्नित कर पग के समीप की धूल ।
बोली विह्वल स्वर में अपना हृदय हाथ से थाम ;
जान सकूँगी क्या मैं अपने उपकारी का नाम ?
रुके शब्द नत नेत्र हुए,
हाँ, वायु हो गई मौन ;
मानों उसने भी पूछा
चुप शब्दों में तुम कौन ?

सरल युवक चुप रहा किंतु मुख पर ये कितने भाव ;
उस पर इस कोमल स्थिति का हो मानों पड़ा प्रभाव ।
'मेरा नाम जानकर बाले, क्या पाओगी सार ;
मैं वह हूँ जिस पर निष्ठुर है यह सारा संसार ।
हाय, भूलता जाता हूँ
कहते हैं किसको प्यार ;
मानव - ओंठ कहा करते हैं
मुझे कभी सुकुमार ।'

तारों के प्रति

सजीले नभ के राजकुमार
सूक्ष्म रश्मियों की बूँदों का यह शैशव आकार
नभ के विस्तृत जीवन में आशाओं का अवतार
उतरो, मर फूलों में ले ओस-विन्दु का रूप
दो दिन के जीवन में कर लूँ तुमसे अपना प्यार
सजीले नभ के राजकुमार

कुहू निशा में अन्धकार सागर का आया ज्वार
खद्योतों में उड़ती थीं जब नव किरणें साकार
मेरी बुझती आँखों में जब था आँसू का भार
उन्हीं आँसुओं से आए थे ले अपना आकर
सजीले नभ के राजकुमार

—

याचना

उज्ज्वल तारक माला मेरी
दे दो मुझे प्रकाश दिव्य
ओ उज्ज्वल तारक-माला मेरी
ऊँचे-नीचे उड़-उड़ कर है खद्योतों का विकल उजाला।
अपनी छवि से पथ बतला दो
दिशा भ्रांतियाँ हैं बहुतेरी
उज्ज्वल तारक-माला मेरी
दो हाथों से रुक न सकेंगी जग-सागर की विषम हिलोरें
निर्बल तन है और बढ़ी है
चिन्ता की भय-पूर्ण अंधेरी
उज्ज्वल तारक-माला मेरी
अन्धकार की घोर गुफ़ा में जग-शिशु नहीं दृष्टि आता है
मैं भी खो जाऊँगा उसमें
यदि तुमने की कुछ भी देरी
उज्ज्वल तारक-माला मेरी

ओ पीलेपन !

ओ पीलेपन !
तुमसे ही तो जीवित है
मुकुलित वसन्त का मंजुल यौवन
पंखड़ियों में शयित बने—
छूते हो नव पराग के मधुकन
अन्य रँगों के साथ कर रहे,
इन्द्रधनुष का तिरछा चुम्बन
प्राची करती है सज्जित, तुम से—
प्रिय रवि का रंजित आसन
ओ पीलेपन !

पल्लव में जाकर समाप्त—
करते हो उसका छोटा जीवन
विद्युत में हँस, रुला रहे हो,
दर्शन के अभिलाषी नव धन
सुप्त नेत्र में हँसते आकर,
स्वर्ण-स्वप्न का लेकर वाहन
लपटों के हाथों से छूकर,
भस्म बनाते हो जग के तन
ओ पीलेपन !

स्वर्ण तुम्हारे ही द्वारा—
मेरे उर का है नव आभूषन
श्याम मुरारी के कटि के पट—
का करते रहते हो शासन
नव परिणीता की उँगली को,
चूमा करते हो प्रियतम बन
आओ, मेरे यौवन के कुसुमों
का तो कर लो आलिंगन
ओ पीलेपन !

—

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच,
जग कर, सजकर रजनी-बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो—
ये गजरे तारों वाले?
मोल करेगा कौन? सो रही—
हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में—
अपनी निधियाँ न्यारी।
निर्झर के निर्मल जल में ये—
गजरे हिला-हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमें तो,
किञ्चित विचलित मत होना।
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना।
'लो मेरे तारों के गजरे'
निर्झर-स्वर में यह गाना।

यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय! न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में बिखरा देना सब गजरे॥

—

ओ समीर, प्रातः समीर !

ओ समीर, प्रातः समीर !

मेरे पल्लव सोये हैं, टूटे न शान्त स्वप्नों का तार ;
या तो धीरे से आओ, या रहो दूर, देखो—उस पार।
सरल सुमन शिशुओं ने तेरी, आहट से दीं आँखें खोल ;
यह सौन्दर्य-सुधा छलका कर घटा दिया क्यों उसका मोल।
ओ समीर, निष्ठुर समीर !

कलियों को मत छुओ, बालिकाएँ हैं, सरला हैं, अनजान ;
गाना मत उनके समीप उन्मत्त अरे, यौवन के गान।
असम तुम्हारा है प्रवाह, ध्वनिपद से करते व्योम-विहार ;
या तो धीरे से आओ या रहो दूर, देखो उस पार।
ओ समीर, मादक समीर !

किसका शिशुपन चुरा-चुरा कर भरते हो ओसों में आज ?
किसकी लाली छीन, कर रहे उषा प्रियतमा का यह साज ?
एक मन्द झोंके ही में क्यों, उड़ा दिये सब तारक-फूल ;
मेरे स्वप्नों में क्यों भर दी, मेरे जागृत-पन की धूल।
ओ समीर, पागल समीर !

—

एकान्त गान

अरे, निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकान्त प्रान्त प्राङ्गन में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?

अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधःपतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो बन - बन ?

विरह - व्यथा में अश्रु बहा कर,
जलमय कर डाला सब तन।
क्या धोने को चले स्वयं
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन ?

लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर।
क्षणभर ही अविचल होकर
कम्पित होते अति, गति खोकर।

लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिङ्गन।
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरु-गन।

अविचल चल, जल का छल-छल,
गिरि पर गिर-गिर कर कल-कल स्वर।
पल-पल में थल-थल पर गूँजे
विकल करे झर-झर निर्झर।

ओस-विन्दु

अवनीतल के परम मनोहर,
ए नव शोभाशाली इन्दु !
नीरव शून्य भावनावाली
रजनी के आँसू के विन्दु !
लतिका-रमणी के कण्ठों के—
भू-पर बिखरे श्वेत प्रवाल !
विकसित फूल तथा कलियों के—
तरल स्वेद के सुन्दर-जाल !

प्रकृतिदेवि के ललित लाड़ले,
चन्द्रदेव के सुत भावुक !
अथवा उषादेवि दर्शन को,
अवनी के लोचन उत्सुक !
सुमन-चयन के समय प्रकृति के
कर से पतित प्रसून अजान !
रवि-किरणों में उड़ने वाले—
ऐ छोटे-से विशद विमान !

देव नारियों के सञ्चित मृदु
हास्यों के हे विविध स्वरूप !
तृण के सिंहासन पर बैठे,
हरित दूब के सुन्दर भूप !
शस्य तथा वृक्षों पर बैठे,
छोटे-छोटे मूक विहंग !
अमृत स्वर्ग के ! आये हो क्या
रमने नश्वरता के संग ?

शशि ने रात्रि-समय जो किरणें—
बोईं उनके नव अङ्कुर !
बिछुड़े पति हो उषादेवि के,
उससे मिलने को आतुर !
सुषमा के छोटे-से गुम्बद,
प्रकृति-गणित के शून्य अमित !
रवि के नीरव नव बन्दीजन,
पवन-खिलौने नव-निर्मित !

• •

प्रातः को छवि के उफान ! ऐ उड़ जाओ सौन्दर्य-निधान !
कुछ क्षण ही जीवित रहना है, इस जग को दे दो यह ज्ञान !

गर्वित गान !

गगन में गूँजे गर्वित गान !
किस बाला के अधरों को छू,
पा समीर की गोद।
भूल-भूल कर भावुक ! आये,
भरते मन में मोद !
किन श्वासों में जाग,
कण्ठ कल धीरे-धीरे त्याग।
लेकर अपने साथ ओष्ठ का,
परिमल और सु-राग।

किस यौवन की मदिरा पीकर,
पाकर शक्ति अपार।
मृग-नयनी के नयनों में—
चुपचाप बने साकार !
अधर - द्वार को खोल,
प्रतीक्षाकांक्षित पाकर वायु !
गिरे जगत में मैली करने—
अपनी छोटी आयु !

शिशु के अस्फुट उच्चारण में,
दिखा तुम्हारा वास।
और तुम्हीं थे उसके अविदित,
उल्लासों के पास!
उसकी छवि की सरल सुधा में,
धुले न कितनी बार?
तुम पर ही था प्यार उसी का—
केवल तुम पर प्यार!

मधु-ऋतु में कोकिल करती थी,
बौरों का आह्वान।
वहीं तुम्हारा जन्म हुआ था,
वहीं हुआ अवसान!
कम्पित कर-कर पल्लव को,
प्रति-ध्वनि में डूबे आह!
एक वेदना छोड़ गये—
ले चंचल वायु-प्रवाह!

बाल-चन्द्र की शैशव-किरणों—
का वह क्रीड़ा - काल ;
वहाँ प्रसूनों ने गूँथी थी,
बिखरी मधुकर माल।
उनके अविदित भावों में—
(जब मुझे न था कुछ ज्ञान) ;
अरे गान ! उस समय हुई थी,
तुमसे कुछ पहचान !

प्रकृति-जननि ने गूँथा था—
हरियाली का मृदुजाल ;
क़ैदी बन कर खेल रहे थे,
कुछ विहगों के बाल !!
उनके कण्ठों में सोये थे,
जग कर तुम सुकुमार ;
शिशु-समीर की मृदु धड़कन में,
गूँजे थे उस बार !

फूलों ने हँस कर छोड़ा था,
अपना सौरभ - भार;
कलियों ने अपने रङ्गों से,
किया लिपट कर प्यार!
कलित कोंपलों ने झुक कर—
दिखलाया मुग्धा भाव!
ओस-स्वेद में भर आये थे,
मुख के लज्जित भाव!
वहीं से आये हो क्या गान?

सरिता-तट

ओ सरिता - तट सुखकर
अपने दोनों बाहु - पाश में
सरिता को लेते हो भर
ओ सरिता - तट सुखकर

तुमसे ही तो चलती है वह,
नियमित होकर पल-पल पर
गाती रहती है लहरों में,
गूथ - गूथ कर कल - कल स्वर

अपने वक्षस्थल पर रक्षित
रखते हो कितने तरुवर
विजन डुलावें जिससे वे प्रिय,
सरिता को अपने मन भर

संध्या - समय गगन में जाती,
जब रत्नों की राशि बिखर
तभी सजाया करते हो
सरिता को रँग - रँग भर-भर कर

जब सरिता के अंचल में नभ,
सो जाता है शिशु बन कर
तभी लहर की सरस थपकियाँ
देते हो तुम अति मृदुतर

सरिता के जीवन में आवें
जब वर्षा के प्रलय प्रहर
अपना यह अस्तित्व मिटाने—
का मत खो देना अवसर
ओ सरिता-तट सुखकर

—

नूरजहाँ

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी
वैभव भी बलिहार हुआ था तेरे मुख का पानी
नूरजहाँ ! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी
तेरी इच्छा ही बनती थी जहाँगीर की रानी
फूलों के यौवन से सज्जित—
केश - राशि थी खोली
तन से तो तू युवती थी पर—
मन से कितनी भोली

एक स्वप्न था कभी आगरे ने विस्मित हो देखा
मुग़लों के भाग्यों में थी बस एक सुनहली रेखा
उस रेखा से ही सज्जित तेरी मृदु आकृति आई
जिस पर छवि विभूति सोई थी यौवन में अलसाई
सिंहासन के मणियों ने थी—
शोभा वही निहारी
जिसके लिए सलीम—
शाहज़ादे से बना भिखारी

कान्तिमती थी मानों शशि-किरणों पर तू सोती थी
राजमहल की सरस-सीप में तू जीवित मोती थी
वह मोती का प्यार—चुप रहो ऐ सलीम, मत बोलो
इस सौन्दर्य-सुधा में मत विषमयी वासना घोलो
वह मोती का प्यार—सजा है,
जिसमें छवि का पानी
कैसे रक्षित होगा ? यह—
दुनिया तो है दीवानी

कोमल छवि का मोल ! वासना ही के उपहारों में—
और प्रेम का मोल रत्न के—हीरों के हारों में—
करता है संसार, यही है उसकी रीति निराली
अंधकार से तारों का विक्रय करती निशि काली
यह न स्थान है जहाँ प्रेम का—
मूल्य लगाया जावे
नूरजहाँ तेरे मन का सौदा—
सुलझाया जावे ।

जहाँगीर क्या समझ सका था तेरे मन की बातें
तेरे साथ उसे भाती थीं बस चाँदी की रातें
सारी रात देखते थे तारे तेरे दृग-तारे
प्रातः तेरे आँसू लख कर बिखर गये थे सारे

इस रहस्य ही में करुणा की
थी अव्यक्त कहानी
कितने हृदय - प्रदेशों की थी
एक साथ तू रानी

• • •

(इन आँखों में देखो जाती—
थी मदिरा की लाली
स्वप्न बनी तू और साथ ही
स्वप्न देखने वाली)

सदियों के सागर में डूबी तेरी गौरव-गाथा
उफ़, तेरे चरणों पर था किस-किस प्रेमी का माथा
जगत देखता रहा फूल वह तोड़ ले गया माली
हाथ बढ़े ही रहे गिर पड़ी यौवन की वह प्याली
नूर रहित हो गया जहाँ,
तेरे जग से जाने से
नूरजहाँ, तू जाग-जाग फिर
मेरे इस गाने से

—

अशान्त

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ,
आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में,
कैसे देखूँ जीत ?
उषा अभी सुकुमार; क्षणों में—
होगी वही सतेज,
लता बनेगी ओस - बिन्दु की
सरल मृत्यु की सेज;
कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप।
किसका गायन बने न जाने मेरे प्रति अभिशाप।
क्या है अन्तिम लक्ष्य—
निराशा के पथ का ?—अज्ञात !
दिन को क्यों लपेट देती है
श्याम वस्त्र में रात ?
और, काँच के टुकड़े बिखरा—
कर क्यों पथ के बीच,
भूले हुए पथिक-शशि का दुख—
देता है नभ नीच ?
यही निराशामय उलझन है क्या माया का जाल ?
यहाँ लता में लिपटा रहता छिपकर भीषण व्याल।

देख रहा हूँ बहुत दूर पर,
शान्ति-रश्मि की रेख;
उस प्रकाश से मैं अशान्त-तम—
ही सकता हूँ देख;
काँप रही स्वर-अनिल-लहर
रह-रह कर अधिक सरोष;
डर कर निरपराध मन अपने—
ही को देता दोष!
कैसा है अन्याय? न्याय का स्वप्न देखना पाप!
मेरा ही आनन्द बन रहा, मेरा ही सन्ताप।
हास्य कहाँ है? उसमें भी है,
रोदन का परिणाम;
प्रेम कहाँ है? घृणा उसी में
करती है विश्राम;
दया कहाँ है? दूषित उसको—
करता रहता रोष;
पुण्य कहाँ है? उसमें भी तो—
छिपा हुआ है दोष;
धूल हाय! बनने ही को, खिलता है फूल अनूप।
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप।

मेरे दुख में प्रकृति न देती
क्षण भर मेरा साथ;
उठा शून्य में रह जाता है,
मेरा भिक्षुक - हाथ;
मेरे निकट शिलाएँ, पाकर
मेरे श्वास-प्रवाह;
बड़ी देर तक गुञ्जित करती—
रहतीं मेरी आह;
'मर-मर' शब्दों में हँस कर, पत्ते हो जाते मौन।
भूल रहा हूँ स्वयं, इस समय मैं हूँ जग में कौन?
वह सरिता है—चली जा रही—
है चंचल अविराम;
थकी हुई लहरों को देते,
दोनों तट विश्राम;
मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशिदिन आठों याम;
नहीं सुना मेरे भावों ने,
'शान्ति-शान्ति' का नाम;
लहरों को अपने अंगों में तट कर लेता लीन।
लीन करेगा कौन? अरे, यह मेरा हृदय मलीन!

कंकाल

क्या शरीर है ? शुष्क धूल का—
थोड़ा - सा छवि जाल ;
उस छवि में ही छिपा हुआ है
वह भीषण कंकाल ;
उस पर इतना गर्व ? अरे,
इतने गौरव का गान ;
थोड़ी-सी मदिरा है, उस पर,
सीखा है बलिदान ;
मदमाती आँखोंवाले, ओ ! ठहर, अरे नादान !
एक-फूल की माला है उस पर इतना अभिमान ?
इस यौवन के इन्द्र-धनुष में
भरा वासना-रंग ;
काले बादल की छाया में,
सजता है यह ढंग ;
और उमंगों में भूला है
बन कर एक उमंग ;
एक टूटता-स्वप्न आँख में
कहता उसे 'अनंग'—
वह 'अनंग' जो धूल-कणों में भरता है उन्माद ।
जर्जरपन में भी ले आता नवयौवन की याद ।

और (याद आया अब)—
मृगनयनी का नयन-विलास ,
हँसती और लजाती थी—
चितवन कानों के पास ;
गोल गुलाबी गालों में—
भरकर ऊषा का रंग ;
पैना तीर चला चितवन का,
करती थी भ्रू-भंग ;
मैंने देखा था उसमें, गिरते—फूलों का हास ।
संध्या के काले अंबर में मिटता अरुण-विकास ।
दूर ! दूर !!—मत भरो कान में,
वह मतवाला राग ;
यही चाहते हो मैं कर लूँ
इस जग से अनुराग ?
गिरते हुए फूल से कर लूँ
क्या अपना शृंगार ?
करने को कहते हो मुझसे,
निश्चल शव से प्यार !
गिन डालूँ कितनी आहों में अपने मन के भाव ?
पथराई आँखों से कैसे देखूँ विष का स्राव !

अरे, सत्य की भाषा ही में
क्यों कहते हो पाप ?
क्षणिक सुखों की नीवों पर
क्यों उठा रहे सन्ताप ?
सुमन-रंग से किस आशा पर
करते अमर विहार ?
ओस-कणों में देख रहे—
सारे नभ का शृङ्गार ?
प्यार-प्यार क्यों प्यार कर रहे नश्वरता से प्यार ?
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार।
मृत्यु वही है, जिसमें होती,
जीवित क्षण की हार ;
वे ही क्षण क्यों भाग रहे हैं
वर्तमान के पार ?
मेरे आगे ही, मेरे
जीवन का नाश विलास ;
झाँक शुष्कता रही चोर-सी,
हृदय सुमन के पास ;
जीवन-आभा बनती जाती दिन-दिन अधिक मलीन।
अंधकार में भी बनता हूँ मैं लोचन से हीन।

भूल रहा हूँ पाकर स्मृति की,
चंचल एक हिलोर ;
देख रहा हूँ मैं जीवन के
किसी दूसरी ओर ;
हाँ, वह यौवन-लाली करती
जीवन-सुमन विहार ;
मादकता में धूल-कणों से—
भी करती थी प्यार ;
शुष्क पत्तियों से भी करती आलिङ्गन का हाव।
मतवाले बन-बन कर आते, मन के नीरस भाव।
काले भावों की रजनी में
आशा का अभिसार,
मैंने छिप कर देखा था,
देखा था कितनी बार ;
उनका आना और समुत्सुक—
मेरे मन का प्यार,
दोनों भाव बना देते थे
लज्जित लोचन चार ;
किन्तु, मुझे क्या मिलता था ? क्या बतला दूँ उपहार ?
शीतल ओठों का मुरझाया-सा चुम्बन उस बार।

उत्सुकता के बदले में यह
भीषण अत्याचार ?
घृणा, घृणा शत-जिह्वा से
डसती थी बारम्बार ;
आँखों की मदिरा का बन जाना
आँसू की धार ;
बाहु-पाश का शक्ति-हीन हो
गिरना धनुषाकार ;
यह था क्या उपहार, अरे इस जीवन का उपहार !
फूल-रूप क्यों रखता है यह धूल-रूप संसार ?
छविमय कहते हो जिसको
जिसमें है रूप अपार ;
हाय ! भरा है उसमें कितने,
पापों का संसार !
पहन रहे हो हार,
उसीमें भूल रही है हार ;
पुण्य मानकर क्यों करते हो,
इन पापों से प्यार ?
मुझे न छूना, जतलाओ मत अपना झूठा प्यार।
धूल समझकर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार।

अन्त

किन भीगी आँखों की पलकों—
में करती है वास ?
किन आँसू की बूँदों से
तेरी बुझती है प्यास ?
अरी वेदने ! सिखलाया है
किसने राग विहाग ?
जला रही आकाश सभी, ले
पूर्व-दिशा की आग।
क्यों करने आई है मुझ से, चिरसंचित अनुराग ?
ऐ अनन्त यौवन वाली ! तू बार-बार मत जाग
मेरा हृदय भग्न है उसके
टूटे हैं सब द्वार ;
भाग गया है उससे
रोका हुआ अतिथि-सा प्यार ;
वृद्धा आशा के जीवन के—
लघु दिन हैं दो चार ;
नित्य निराशा के विष से मैं
करता हूँ उपचार !
पड़ा हुआ है मृत-सा भू पर, जीवन-दीप-प्रकाश।
अरी वेदने ! बिखर रहा है उस पर तेरा हास !!

—

यह अन्तराल

अन्धकार में वृक्षों के कंकाल
उनसे भी भीषण है मेरे कृश भावों का अन्तराल ।
सूनापन था मानो पृथ्वी पर आया आकाश श्याम ;
खद्योतों ने तारों के अनुरूप दिखाये बिन्दु ज्वाल ।
पात पतन के पहले झंझा में झूमा दिन-रात ;
एक झकोरे में छिप कर आया था मानो क्रूर काल ।
प्रलयंकर शिव के दिक्पट में घन का बिखरा श्याम दाग ;
उससे भी मैला है मेरे जीवन का संकीर्ण भाल ।
वायु वेग से बिखरे हैं पेड़ों में वृन्तों के समूह ;
अपने स्वजनों को स्वअंक से तरु क्यों हाय, रहा उछाल ।
अन्धकार में हुआ सर्प-दंशित-सा जग निश्चेष्ट मौन ;
कभी किसी को डसे न मेरे दुख-तम का दुर्धर्ष व्याल ।
सुमनों, कलियो, सुनो...वायु के वेग सुनो, बस एक बार ;
शिशिर रूप में आना, शीतल है मेरा यह अन्तराल ।

उच्छ्वास

वेदना की राहों से कहाँ,
उमड़ कर आते हो उच्छ्वास।
साथ में करुण-कथा का कोष,
ले चले किस निर्धन के पास ?
अरे, किस अश्रु - तरङ्गिनि - तीर
बह गये बन कर उष्ण समीर।
रहो उस पार, रहो उस पार,
न छूना मेरा विकल शरीर !
तुम्हींने अश्रु उठाये, किन्तु
उन्हीं में हुआ तुम्हारा पतन
किसे पाने को तुम उड़ चले,
वायु के सदृश बना कर स्व-तन।
उमड़ कर बनो अपरिमित कोष,
एक बादल का लेकर रूप।
छिपा लो, मेरा यह अस्तित्व,
छिपा लो मेरा करुण स्वरूप !

हार

सजाये हैं मैंने ये हार!

उषा - सम रंजित रुचिर प्रसून
शरद - बादल - सी कलियाँ श्वेत
व्योम - से पल्लव कोमल श्याम
सभी हारों में हैं समवेत
सजाये हैं मैंने ये हार!

प्रात की पीकर अनिल अपार
लता की हरी-हरी-सी गोद
झूल कर फूल रहे थे फूल
हार में सोये हैं सविनोद
सजाये हैं मैंने ये हार!

ओसजल में मुख धोकर मौन
विहग का सुन कर कलरव-गान
कली अलि-अवली से पा प्रात
स्वार्थ स्वागत का मीठा मान
सजाये हैं मैंने ये हार!

और पल्लव—पल्लव हैं बाल
सुकोमल हैं, मृदु हैं, सुकुमार
पवन ने उन्हें सरल शिशु जान
झुलाया है कितनी ही बार
सजाये हैं मैंने ये हार !

लताओं का यह यौवन - भार
चुरा लाया हूँ मैं इस बार
प्रिये, तुम ले लो इसको मोल
दृगों का दे तिरछा उपहार
सजाये हैं मैंने ये हार !

—

शुजा

[शाहजहाँ बीमार है। उसके चार पुत्र हैं—दारा, शुजा, मुराद और औरंगज़ेब । राज-सिंहासन के लिए उसके चारों पुत्रों में लड़ाई हो रही है। औरंगज़ेब ने दारा और मुराद को पराजित कर दिया है। वह शुजा का पीछा बंगाल में कर रहा है। शुजा बनारस, मुंगेर, मुर्शिदाबाद, ढाका से होता हुआ अराकान के राजा की शरण लेता है। वहाँ भी राजा से मनोमालिन्य होने के कारण शुजा अराकान के प्रशान्त वन में सदैव के लिए चला जाता है। मैं अराकान से पूछना चाहता हूँ—'शुजा कहाँ है ?']

मौन - राशि ओ अराकान !
अथ-हीन और इति-हीन मौन,
यह मन है, तन भी यही मौन ;
निर्जनता की बहुमुखी धार,
अविदित गति से है वही मौन।
यह मौन ! विश्व का व्यथित पाप ;
तुझ में क्यों करता है निवास ?
क्या व्योम देख कर ? अरे व्योम—
में तारों का है मुक्त हास।

ये शिला-खंड—काले कठोर—
वर्षा के मेघों - से कुरूप !
दानव-से बैठे, खड़े या कि—
अपनी भीषणता में अनूप !
ये शिला-खंड—मानों अनेक
पापों के फैले हैं समूह !
या नीरसता ने चिर निवास—
के लिये रचा है एक व्यूह !

वह सर्प—(मृत्यु-रेखा सजीव)—
खिंचती चलती है दिशा-हीन !
विष मौन कर रहा है प्रवास ;
ले एक वक्र वाहन मलीन।
दो भागों में जिह्वा-प्रवाह ,
चंचल है सुख-दुख के समान ;
तजता समीर फुफकार—आह ,
यह देख मृत्यु का सगति यान।

ओ अराकान! यह विषम भूमि ,
भय ही जिसका है द्वारपाल ;
शिशुपन यौवन से है अजान ,
जर्जरपन ही था जन्मकाल।
सुख-सदृश न्यून हैं लघु प्रसून ,
दुख के समान हैं कुश अपार ;
दोनों का अनुचित विवश योग ,
है जीवन का अज्ञात हार।

क्या हार ? आह, वह शुजा वीर !
संग्राम-भूमि में गया हार !
यह वही शुजा है जो सदैव—
वैभव का था जीवित विहार !
यह वही शुजा है, एक बार—
जिससे सज्जित थे राज-द्वार !
अब हार—(विजय की पतित राशि)
लज्जित करता है बार-बार !

जीवन के दिन क्या हैं अनेक ?
वृद्धा के सिर के श्याम केश !
जर्जरपन ही है मुक्त - द्वार ;
जिसके सम्मुख है मृत्यु देश !
यह वैभव का उज्ज्वल शरीर ,
दो दिन करता है अट्टहास ;
फिर देख स्वयं निज विकृत रूप ,
लज्जित हो करता है प्रवास !

वह शुजा ! आह, फिर वही नाम—
मचले बालक-सा बार - बार ;
सोई स्मृति पर लघु हाथ मार ,
क्यों जगा रहा है इस प्रकार ?
वह शाहजहाँ का राज्यकाल !
मानों हिमकर का रजत हास !
लक्ष्मी का था इस्लाम-रूप !
स्वर्गों का था भू पर निवास !

वे दिन क्या थे ! यौवन-विलास—
संध्या - बादल-सा था नवीन !
यह रास-रंग—वह रास-रंग—
यौवन था यौवन में विलीन !
धन भूल गया था व्यक्ति-भेद ,
उसकी गति का था हुआ नाश ;
था स्वर्ण - रजत का एक मूल्य ,
रत्नों में पीड़ित था प्रकाश।

रमणी के कंठों पर स-रत्न,
सोया करता था बाहु-पाश;
उच्छृंखलता भी थी प्रमत्त,
चिन्ता जीवन से थी हताश।
'शासित के जी हलके सदैव—
थे, शासक पर था राज्य-भार!
उसकी जागृति से सभी काल,
निद्रित रहता था दुराचार।'

उस दिन वह केवल था विनोद,
जब नीली यमुना के समीप;
संचित था उत्सुक जन-समूह,
(बुझते जाते थे नभ-प्रदीप)।
काले बादल-से दो प्रमत्त,
हाथी लड़ते थे बार-बार;
विद्युत-सा उद्धत चपल शब्द,
सूचित कर देता था प्रहार।

अपनी आँखों में भरे हर्ष—
उत्सुकता की चंचल हिलोर;
नृप शाहजहाँ रवि-रश्मि-युक्त—
हो, देख रहा था उसी ओर।
सम्मुख थे उसके राजपुत्र,
चंचल घोड़ों पर थे सवार;
आश्चर्य उमंगों का सदैव—
दृग में बढ़ता था तीव्र ज्वार।

औरंगज़ेब की ओर एक—
गज दौड़ा बन साकार क्रोध;
पर थी उसकी तलवार तीव्र,
करने वाली चंचल विरोध।
जीवन का अब अस्थिर प्रवाह,
दो क्षण तक ही था रहा शेष;
पर वाह, शुजा रे शुजा वीर!
तेरी चंचलता थी विशेष!

तूने विद्युत बन कर सवेग,
विद्युत-तर कर भाला विशाल;
उस मृत्यु-रूप गज के सरौद्र,
मस्तक पर छोड़ा था कराल।
गज घूमा, तू औरंगज़ेब—
को बचा, हो गया अमर वीर!
मैं तुझे खोजता हूँ अलक्ष्य,
अब अराकान में हो अधीर।

था शाहजहाँ बीमार, और—
दारा बैठा था नमित माथ;
जिन पर आश्रित था राज्य-भार,
वे काँप रहे थे आज हाथ।
दरबार हो गया नियम-हीन,
प्रातः-दर्शन भी था न आह;
रवि-शाहजहाँ से हुआ शून्य,
प्रति दिन प्राची-सा ख्वाबगाह।

गत तीस वर्ष का राज्यकाल,
विस्तृत था स्वप्नों के समान;
जिनमें निद्रित था बन प्रशान्त,
इस जीवन का अस्तित्व ज्ञान।
'शाही-बुलन्द - इक़बाल' युक्त,
दारा का शासन था सहास;
पर शाहजहाँ का मृत्यु-कष्ट,
करता सुख से सुख पर प्रवास।

चिन्ता-निर्मित नत व्यथित शीश,
झुकते थे दिन में अयुत बार;
मृदु वायु सह रही थी अनन्त,
आशीषों का अविराम भार।
जिस तन पर मणियों का प्रकाश,
अपना जीवन करता व्यतीत;
अब वह तन है कितना मलीन!
कितना निष्ठुर है यह अतीत!

जब शाहजहाँ ने एक बार,
सोचा जीवन का निकट अन्त;
दृग से दो आँसू गिरे, और—
उनमें आकांक्षा थी अनन्त।
ये जीवन के दो दिवस शेष,
जिनमें होंगी स्मृतियाँ अतीत;
प्रिय ताजमहल के पास क्यों न,
हों प्रेयसि-चिन्तन में व्यतीत?

कुछ दूर—आगरे में अनूप,
संचित है स्मृति का अश्रु-विंदु;
वह ताज—(वेदना की विभूति),
अंकित है भू पर पूर्ण इन्दु।
यह शाहजहाँ है एक व्यक्ति,
जिसने इतना तो किया काम;
दे दिया विरह को एक रूप,
है 'ताज' उसी का व्यथित नाम।

पर—है प्रेयसि की स्मृति पवित्र,
कितनी कोमल! कितनी अनूप;
फिर शाहजहाँ ने बन कठोर,
क्यों दिया उसे पाषाण-रूप?
यदि फूलों से निर्मित अम्लान,
यह ताजमहल होता सहास;
तब होता स्मृति का उचित चिन्ह,
मैं क्यों रहता इतना उदास?

तारों की चितवन के समान,
था शाहजहाँ अपलक अधीर;
यमुना की लहरों से समोद,
क्रीड़ा करता था मृदु समीर।
कितने भावों को कर विलीन,
छोटे-से दृग के बीच आज;
दिल्ली का स्वामी बन मलीन,
था देख रहा निस्तब्ध ताज।

वह ताज ! देख कर उसे हाय ,
उठता था दृग में विकल नीर ;
मुमताज ! कहाँ पाषाण-भार ,
है कहाँ तुम्हारा मृदु शरीर !
है कहाँ तुम्हारी मदिर-दृष्टि ,
जिसमें निमग्न था अधर-पान ?
अधरों में संचित था अनूप ,
इक्षुज-सा कोमल मधुर गान !

था मधुर गान !...अः, वह मुराद ,
औरंगज़ेब के सहित आज ;
है शुजा—शुजा भी है स-ओज ,
सजने को भीषण युद्ध - साज ।
दिल्ली का सिंहासन विशाल ,
है आज युद्ध का पुरस्कार ;
जीवन होगा जय का स्वरूप ,
क्या मृत्यु-रूप होगी न हार ?

नृप शाहजहाँ की हीन शक्ति,
बन गई सुतों का बल अपार;
दारा, मुराद, औरंगज़ेब,
थे मानों जीवित अहंकार।
सतलज की लहरें हुईं क्षुब्ध,
जब उठा भयंकर युद्ध-नाद;
प्रतिबिम्बित था जल में अनन्त—
सेना - समूह—भीषण विषाद।

दारा का वैभव - पूर्ण युद्ध,
वृद्धा - जीवन-सा था अशक्त;
(धन का सेवक था युद्ध-वाद्य,
वह गया स्वर्ण के साथ रक्त!)
वह दिल्ली से लाहौर, और—
मुलतान सिन्ध से गया कच्छ;
कलुषित-सा होने लगा नित्य,
उसकी जय का आकार स्वच्छ!

दादर में दारा की विभूति—
का द्रुत आँसू में था प्रवाह ;
नादिरा - हृदयसंगिनी आज ,
थी मृत्यु-संगिनी आह ! आह !
दारा के उर पर अश्रु और
मोती बिखरे थे बन अधीर ,
सिसकियों-भरे चुम्बन-समेत ;
था मृतक नादिरा का शरीर !!

बन्दी था अब वह राजपुत्र ,
भिक्षुक-स्वरूप हो गया ईश !
क्षण-एक हुआ चीत्कार रुद्ध ;
फिर गिरा रक्त से सना शीश !
वह शीश देख औरंगज़ेब—
हँस कर रोया था बहुत देर ,
मानो निर्दयता ने स-भूल ,
थोड़ी-सी करुणा दी बिखेर ।

भोला मुराद-(मदिरा-प्रवीण)—
सोया था होकर शस्त्र-हीन,
चरणों को अलसाई अनूप,
थी दबा रही बाँदी नवीन,
उस समय दुष्ट औरंगज़ेब—
ने भेजा था क्यों शेख़ मीर ?
जिससे सहायता हीन सुप्त,
भाई का बन्दी हो शरीर।

अः शुजा! और तुम! कहो वीर!
बंगाल तुम्हारा था प्रवास,
सुख का दिन—सुख की रात शान्त,
यह सत्रह वर्षों का निवास!
उस राजमहल की शान्त वायु—
पा शाहजहाँ का समाचार,
निर्बल रोगी-सी हुई क्षुब्ध;
आकांक्षा का हिल उठा तार।

तू बढ़ा हाथ में ले सगर्व,
शासन का गौरव-पूर्ण भार;
तेरा गौरव था एक चित्र—
तेरा साहस था चित्रकार!
थी शत्रु-वाहिनी अति प्रमत्त;
तू विमुख हुआ था बार-बार,
मानों दृढ़ तट पर शक्ति हीन
लहरों का था असफल प्रहार।

औरंगज़ेब से हुआ युद्ध,
जिसमें थी गज सेना अपार;
विजयी बनकर भी कई बार;
तुझको क्यों स्वीकृत हुई हार?
ढाका से भागा अराकान;
खोकर अपना विजयी स्वभाव,
कितनी नदियाँ कीं शीघ्र पार;
आशाओं ही की बना नाव।

गौरव-रक्षण के हेतु वीर !
तूने अपनाया वन-प्रदेश !
रक्षित है क्या अब भी महान् !
तेरा वह विक्रम वीर वेश ?
तेरे वैभव का मृदु विलास ;
इस अराकान से था अपार ,
इसके पर्वत से भी महान् ;
तेरे सुख का था मधुर भार ।

इसमें विभीषिका भी सदैव ,
रहती है हो-होकर सभीत ;
तेरे समीप मुस्कान मंजु ,
अधरों में होती थी व्यतीत ।
तरु तोड़-तोड़ कर यहाँ नित्य ,
झंझा करता है अट्टहास !
तेरे शरीर में नव सुगन्धि ,
लिपटी-सी करती थी निवास ।

ले अपने वैभव का शरीर,
आया है तू इस भाँति श्रान्त;
एकान्त भूमि में इस प्रकार,
तू ही है उजड़ा एक प्रान्त!
ओ अराकान के शून्य प्रान्त!
तेरे विशाल तन में प्रशान्त;
वह शुजा हृदय की भाँति आज,
क्या धड़क रहा है वन अशान्त?

—

चित्ररेखा

१

यह जीवन मधु-भार है।
आज तुम्हारे उर से मेरे,
उर का नव श्रृंगार है।
बाहु-पाश का स्पर्श कंठ पर
मानों पुलकित हार है।
मेरे डग में आज तुम्हारी—
चितवन का अभिसार है।
कभी अधर पर हास—नेत्र में,
कभी अश्रु की धार है।
हास्य-रुदन के इस मिलाप का,
नाम कहो क्या प्यार है?
मुझमें व्यथा, तुम्हारे उर में,
आशा का अवतार है।
हम दोनों के चिर मिलाप से,
निर्मित यह संसार है।
यह जीवन मधु-भार है।

२

समय ! आज तू मिलन-रूप बन ।
पलकों की गति सहित ठहर जा,
उर में है तारक-सा कम्पन ।
जग में जितने सरस सुमन हैं,
वे सब मेरे विकसित मन हैं ।
पवन - पंख पर बैठ किरण-से
आ जावें मेरे जीवन धन ।
समय ! आज तू मिलन-रूप बन ।

३

इक्षुज-सी वह ध्वनि कोमल ।
मेरे इस जागृति के जग में,
खिंची क्षितिज-सी वह प्रति पल ।
करुणायुत निषाद के स्वर में,
विहगों का है कंठ विकल ।
मेरा क्षितिज न छू पाते हैं
उनके बाल-प्रयास विफल ।
उनके लघु उर में गूँजेगा,
कैसे विस्तृत गान चपल ।
मेरी ध्वनि से ही प्रभात का,
अब होगा अवतार सरल ।

४

वह प्रतिध्वनि डूबी जब वन में ।
एक वायु की लहर उठी
जो लगी विरह-सी मेरे तन में ।
चितवन थी संध्या-सी निष्प्रभ
मैं था मानों विस्तृत नत नभ
जग की सारी आकांक्षा—
मैंने पाई अन्तिम दर्शन में ।
मैं भी भूल गया जब वन में ।

५

जीवन का छोटा-सा बादल।
एक विशाल शून्य के उर में,
क्यों इस भाँति हुआ उच्छृंखल ?
दिशा नहीं है ज्ञात और—
है पथ-विहीन सारा नभ-मंडल।
आ-आ कर आकार विकृत
कर जाता है भविष्य का प्रति पल।
प्राण ! तुम्हारा हास—यही तो
है मेरा अस्तित्व अचंचल।
मेरे कण-कण में निर्मित हो,
सुखी विश्व का नव क्रीड़ास्थल।

६

मेरे जीवन की स्मृति ले-—
जागे उपवन के फूल ।
प्रातः पवन सरल सेवक-सा—
है समीप अनुकूल ।
अरी ओस! इस अवसर पर मत-
ले प्रसून प्रतिबिम्ब ।
दो दिन के इस जीवन में—
मत कर यह पहली भूल ।

आश्रित मत हो कुसुम-दलों पर, उर, इस जीवन में जाग!
इन स्मृतियों का रूप मंजु है, पर उर में है आग !!

७

(काले बादल की बूँद)

काले तन के उज्ज्वल मन !
कलुष - रहित हो तुम फिर भी
क्यों इतना प्रिय है अधःपतन ?
यह नीला आकाश (जहाँ—
करते हैं कितने विश्व अटन।
अपना विस्तृत रूप भूल कर
बन कर लघु प्रकाश के कन !!)
—फैला है मेरे जीवन-सा
जिसमें है स्वर्गिक गायन।
पतन तुम्हारा आज बनेगा,
इस वसुधा का अभिनन्दन।

८

रंगमंच-से सांध्य गगन !
कितने रंगों का प्रवेश है
कितनों का प्रस्थान—पतन।
जीवन की वह लहर—(सजा है,
जिसमें छवि का नव-यौवन।)
—वही क्षितिज में, आह !
प्रथम दर्शन में था अन्तिम दर्शन !!
यह विलास का नृत्य, समय का–
तन, सुख का मन, मेरा धन।
इसी चित्ररेखा से अंकित—
हुआ शून्य में जग-जीवन।

—

ओस के प्रति

तितली के नश्वर दर्पण !
ओस !—(वारि की पृथ्वी)—ठहरो !
मेरी पृथ्वी पर दो क्षण ?
किञ्चित स्पर्श असह्य तुम्हें,
ओ कोमल ! यह कैसा है प्रण ?
एक बूँद ही के तन में—
कितना अथाह है आकर्षण ?
मेरा भी जीवन उज्ज्वल है,
मेरा भी जीवन लघु कण
प्रतिबिम्बित कर लो इस तन में—
नभ से लेकर निर्बल तृण ।

—

रूपराशि

[पश्चिम आकाश में संध्या]

कुछ तारक कलिकाएँ ! वे भी हैं सुगन्धि से हीन।
रजनी ! तेरे आँगन में सब कुछ है स्तब्ध मलीन।
नभ नीला है, तेरा तन भी...(बस, न कहूँगी और।)
मेरी रूपराशि कहती है नभ से कथा नवीन।

(रजनी का प्रवेश)

यह नवीन संध्या ? जिसमें रंगों का क्षणिक प्रवास—
भूले भटके बादल के टेढ़े मुख का है ग्रास !!
मेरा नभ नीला है, मेरा तन भी...(कह दूँ)...श्याम !
करती हूँ रवि-सदृश विश्व-शासन तम से सविलास।

प्रस्थान

—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	८	धर	घर
२३	७	सभी...	समी...
,,	१०	करें	करे
३४	५	धँधला	धुँधला
३७	१६	अर्थ	अर्ध
३९	१०	लेत्ते	लेने
४०	३	बड़ती	बढ़ती
,,	४	वही	वहीं
,,	९	दस्यु	दृश्य
४१	१०	नहीं	वहीं
४३	४	गये	गया
,,	,,	सब	वह
४६	२	लौट	लोट
४९	५	मर	मेरे
५५	९	व्यया	व्यथा
६९	१८	का	को
७८	६	दिन रात	दिनरात हाय !
९०	७	मृत्यु	रोग

सरस्वती-प्रेस, काशी से प्रकाशित अन्य पुस्तकें

कर्मभूमि (उपन्यास)	...	३)
गबन (,,)	...	३)
गल्प-समुच्चय (कहानी-संग्रह)		२॥)
प्रतिज्ञा (उपन्यास)	...	१॥)
प्रेम-तीर्थ (कहानी-संग्रह)	...	१॥)
वृक्ष-विज्ञान (बड़ी ही उपयोगी पुस्तक)	...	१॥)
गरम तलवार (वीररस का उपन्यास)	...	१।)
प्रेरणा (कहानी-संग्रह)	...	१।)
गल्परत्न (,, ,,)	...	१)
प्रेम की वेदी (एकांकी नया नाटक)	...	।।।)
नारी-हृदय (कहानी-संग्रह)	...	।।।)
फाँसी (,, ,,)	...	।।।)
प्रेम-द्वादशी (,, ,,)	...	।।।)
ज्वालामुखी (गद्य-काव्य)	...	।।।)
रसरंग (कहानी-संग्रह)	...	।।।)
पाँच-फूल (,, ,,)	...	।।।)
पंचलोक (,, ,,)	...	॥)
सुशीला-कुमारी (लड़कियों के लिए)	...	॥)
सुघड़-बेटी (,,)	...	॥)
अवतार (उपन्यास)	...	॥)
मुरली-माधुरी (सूर दासजी के पद)	...	।=)

पता—सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी